छायागाछ / चिरजीलाल

प्रतिध्वनि
कलकत्ता
७००००७

छायागाछ / चिरजीलाल की कविताएँ
प्रतिध्वनि के लिए मधु जोशी, ३१, हरिराम गोयनका स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०० ००७ द्वारा प्रकाशित / भागचन्द सुराना, सुराना
प्रिन्टिंग वर्क्स, २०५ रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-७०० ००७ द्वारा मुद्रित ।
आवरण विभूतिभूषण दासगुप्त
प्रथम सस्करण १९९२
मूल्य तीस रुपये
CHHAYAGACHH
Poems by CHIRANJILAL

स्वर्गीया माँ की स्मृति मे
—चिरजीलाल

आभार
सर्वश्री मनमोहन ठाकोर, बालकृष्ण गर्ग, गीतेश शर्मा एव नवल
—चिरंजीलाल

अनुक्रम

छायागाछ

आस्तिक और नास्तिक

मृत्यु-भय-ग्रस्त,
आस्तिक हूँ
सकट टल जाने पर,
नास्तिक हूँ। ०

कर्म और निष्काम

मैं उस पथ का पथिक नहीं—
जिसकी मंज़िल का मुझे पता न हो।

चाहे कृष्ण कहे या गीता,
गुरुजन कहें या माता-पिता,
मैं उस कर्म का कर्मी नहीं—
जिसके फल पर मेरा अधिकार न हो।

मैं सुख चाहता हूँ, दुःख नहीं,
लाभ चाहता हूँ, हानि नहीं,
जय चाहता हूँ, पराजय नहीं,
जीवन चाहता हूँ, मृत्यु नहीं—
चाहता हूँ स्वावलम्बन, आत्म-समर्पण नहीं। ०

मैं क्यों अकेला चलूँ ?

मैं इतना अभागा नहीं,
मेरी आवाज भी इतनी बेअसर नहीं
कि मेरे बुलाने पर
कोई मेरे साथ न चले ।

मैं तो चलना चाहता हूँ
लेकर सारी दुनिया को साथ ।

मैं आया हूँ अकेला,
जानता हूँ—
जाऊँगा भी अकेला
लेकिन चलूँगा नहीं अकेला । ०

कोष

मैं नापता रहा—
भार में दर्द का
इन्तज़ार में अमृत का,
प्यार और नफ़रत में शान्ति को,
चालाकी और वाणी में सन्तोष को।

मैं ढूंढता रहा—
बड़ी-बड़ी बातों में चमत्कार
घर के बाहर सुख
किताबों में स्वर्ग।

मैं सराहता रहा—
दुश्मनों के घरों में दोस्ती
सिगरेट और कविताओं में प्रेरणा।
मैं करता रहा—
उदासी और नींद में
उदासी भगाने की कोशिश।

और, अब मेरी प्यास—
हो गई है अन्तहीन
और मैं बन कर रह गया हूँ—
सिर्फ़ एक तमाशा। ●

मल्टी-स्टोरी कल्चर

वर्षों से हो रहा है
बगल के फ्लैट मे
नारी तन का व्यापार—
पडोसी को पता तक नही !

दसवें तल्ले पर रहता
कितना बडा स्मगलर—
किसी को पता तक नही !

हैं नामी-गरामी लोगो के
बेनामी फ्लैट
ऐयाशी के अड्डे—
किसी को पता तक नही !

इस बिल्डिग मे जीवित है—
कितनी असस्कृत सस्कृति
और किसी को पता तक नहीं । ०

हाई-सोसाइटी

इस हाई-सोसाइटी में
अजनबीपन बरती वेष-भूषा में
'डेविड' और 'रजनी' की बातों में
मेरी आँखें तलाश करती रहती हैं दूर।

यौवन-ज्वार से भरी नारियों में,
स्वप्न सी सुन्दर सुकुमारियों में,
मूलों के गरिमामय मुखों पर,
युवकों में
मेरी आँखें तलाश करती हैं
निरन्तर——खोजती रहती हैं दूर। ०

शॉक-प्रूफ

ज़िन्दगी की ऊबड़-खाबड़,
टूटी-फूटी सड़क पर,
झटके खाते-खाते,
मैं अब 'शॉक-प्रूफ' हो गया हूँ।

धूल और धुएँ भरी हवा,
अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाती
क्षय रोग से ग्रस्त
सूखी छातियाँ,
अब और खून नहीं निकाल पाती
राक्षसी गाड़ियाँ ··आती-जाती,
मेरी ज़िन्दगी को अब डरा नहीं पाती।

गड्ढे कीचड़ भरे,
रास्तों पर चलते चलते
मैं अब पक्का हो गया हूँ। ०

परिवर्तन (१)

कल तक घर घर मुस्कानों का
आज वह रह गया है एक ध्वनि ।

कल तक
उनकी तस्वीरें
शिखर से शिखर पर्वतों की
सात देशों के उपकूलों से
आज उन सबको
याद करता है बेचारा ।

कल तक उनका हर शब्द
समाचार था अखबारों में
प्रसारित होता था दूरदर्शन, आकाशवाणी से
और आज...

कल तक हवा में उड़ने वाला
आज चलने लगा है धरती पर । ०

परिवर्तन (२)

पहले मैं देखा करता था
वाटेंड के विज्ञापन
अब मैं देखा करता हूँ
प्लेबॉय मैगज़ीन ।

पहले मैं करता था
डाइरेक्टर का घण्टो इन्तज़ार
अब लोग तरसते है
मुझसे मिलने के लिए ।

देखो,
मैं क्या से क्या हो गया हूँ
व्यवस्था मे परिवर्तन चाहने वालो !
व्यर्थ शोर मत करो
वर्ना··· ०

गरम चाय

गरम चाय !
प्याले मे चम्मच की खनक
भाप से उठती महक !

भाग जाता अवसाद
हल्की सी चुस्की
आती चेहरे पर चमक !

चाय पर
हल हो जाते है बडे बडे मसले
चाय की खूबी—
दोस्त बन जाते हैं अनजान लोग
चाय के प्याले मे
सिमट आता है पूरा जहान। ०

चाय के पौधे

कहो प्यारे मित्रो !
कैसे हो,
कहो, क्या चाहिए तुम्हे ?

तुम तो मुझसे कभी कुछ माँगते नही
कभी शिकायत भी नही करते ।

अपनी बढोत्तरी के साथ
मेरी बढोत्तरी करते ।

सचमे, तुम्ही दोस्त हो सच्चे मेरे
अच्छा है कि तुम चाय के पौधे हुए
आदमी नही ! ०

पत्तों में हवा है
मन कुचल जाए घाटियों में
स्वप्न-विराम हो
फिर भी मन गाऊँ।

देखो अभिसारिका
मटके घूम गई।

सारी दुनिया पर छा जाएँ
चाँदी की चमकती कलियाँ!
सोने की दमकती कलियाँ!!

चाय बागान

सुनहरी सुबह, सिन्दूरी शाम
हर क्षण रंग बदलता आसमान।

रंग-बिरंगी चिड़ियाँ
गुलमोहर की कतार
स्वागत करते देवदार
चाय के पौधों की रक्षा करते छायागाछ !

पर्वतों पर झूलते बादल,
बोगनवेलिया,
उपजती चाय।

रंगभूमि, तपोभूमि,
स्वर्गाश्रम है हमारा चाय बागान। ०

तूफ़ान

हिला चाय बागान
भयंकर था तूफान ।

डरावनी सीटियाँ—
मानो बजा रहा था शैतान ।
फट पड़ा था आसमान ।

पेड़ धराशायी
टूटी वृक्षों की डालियाँ
घरों की टीनें उड़ी
झोपड़ियाँ गिरी
टूटे खिड़कियों के शीशे
घरों के भीतर भरता रहा
वर्षा का पानी ।

घनघोर अंधेरा
मानो प्रलय !

क्या कुछ भी नहीं रहेगा शेष ?

तूफानी रात
पौधे एक दूसरे से गुंथे ।

हुई सुबह
कुछ पौधों ने खोली आँखें
जीत गया जीवन
बीत गया तूफान
फिर से खुला नीला आसमान । ०

आज बागान में

अरे हंसुआ ! अरे बहादुर !
जल्दी जल्दी काम कर ।
अरी सोमारी ! अरी सिरफुलवा !
[illegible] काम कर ।

आने वाली है राजा की सवारी ।
सड़के साफ, सड़क बना, [illegible] ।
गोरा सा, चन्दन सा, साफ सा
साफ बराबर कर ।

जल्दी जल्दी काम कर,
सब काम कर और काम कर ।
जो मन कर हँडिया की,
ओसार टेम कमा ।

आने वाली है राजा की सवारी
आने वाला है वोट देने का टेम
जो काम पिछले पाँच बरस में नहीं हुआ—
वह करना होगा—इन्हीं चार महीनों में । •

चारु मजुमदार

तुम मानवीय ज्वालामुखी,
स्वतत्र भारत के महान क्रातिकारी !

तुमने जगाया—
कृषको को,
युवको को,
बुद्धिजीवियो को,
और
सर्वहारा को ।

तुमने झकझोर कर रख दिया,
एक सुदृढ सरकार को ।

तुम पगलाझोरा की तरह प्रलयकारी
कृशकाय !
किन्तु महाबली,
चारु !
तुम जीवित हो सम्पूर्ण भारत मे,
असख्य नर-नारियो के हृदयो मे । ०

साम्यवाद

कम्यूनिस्ट कहते हैं :
सहन मत करो,
करो सतत परिवर्तन की माँग !

तुमने जानी है कभी
बेकारी की पीड़ा ?
सही है कभी भूख की ज्वाला ?
मरा है कोई तुम्हारा आत्मीय स्वजन
बिना उचित चिकित्सा के ?
सहे हैं कभी पूँजीपतियों के हाथों
अपमान की वेदना ?
सताए गए हो कभी
सरकारी अधिकारियों द्वारा ?

यदि नहीं,
तो तुम क्या जानो साम्यवाद को ? •

भरोसा

भरोसा था
मेरा देश बदलेगा ।
जब परिधान बदला है
तो परिवेश भी बदलेगा !

सड़कों पर
दुकानों पर
गलियों में
हालात बदलेंगे !

पर,
मेरे देश की हालत
होती जा रही है
बद से बदतर ।

मेरा देश रहता है
हमेशा रुग्ण
टी० बी० कैंसर जैसे
सभी रोगों से ग्रस्त ।

फिर भी
आश्चर्य !
रहता है
मस्त । ०

बंदी

सभी बंधे हैं
किसी न किसी बंधन में बंधे ।

कुछ तो बंधे हैं धर्म के बंधन से
कुछ बंधे हैं अपनी मान्यता से
कुछ अपने विचार से
आहार-विहार से
कुछ व्यापार से
कुछ परिवार व्यवहार से ।

बंदी है सभी
सभी में मुक्ति की चाह साधन है ।

कैसे लोग

न जाने कैसे हैं
हमारे लोग !
भाग में डूबी संस्कृति का
कहते हैं योग !

पहले भाग
फिर त्याग ।
खाते छप्पन भोग
फिर करते उपवास ।

लाऊड-स्पीकर लगाकर
करते भगवान का भजन !
शांति के लिए
करते शांति-भंग ! ०

क्रान्ति

रूपसी क्रांति
खड़ी है प्रतीक्षा में
कि कोई तो करे उसका वरण !

कितनी बार हुआ उससे
बलात्कार
कितनी बार कराया गया
उसका गर्भपात ।

लम्पट प्रेमी
जिन्होंने चाही थी मखमली क्रांति
पलायन कर गये अपनी दुम दबाकर ।

जिन्होंने चाहा था
उससे सच्चा वरण
उन्होंने स्वीकार किया
असमय मरण ।

घुटनों में मुँह छिपाए
परित्यक्ता शकुन्तला सी
वह प्रतीक्षा कर रही है
उस दुष्यन्त की
जो देर से ही सही
उसे पहचान तो ले ! ०

महानगर के बारे में

जगह है कहाँ
जगह कम
परिन्दे अनन्त ।

और इतनी सी जगह
आदमी किस कदर
है भटक रहा
भाग जाना,
जगह कहीं न पहुँचना ।
अतल-अगाध गर्त का
है समझ न सक
वहीं भटकना ।

इतना है
भटक जाना । •

हमें क्या !

देश चाहे हो टूक टूक
टूटने दो / हमें क्या !

उनकी बस्तियों को फूंक जला रहे लोग,
फिर जलने दो / हमें क्या !

उनकी बहू का बलात्कार करता रहा
मारने दो / हमें क्या !

उनके बच्चे का अपहरण हो गया,
होने दो, / हमें क्या !

उनके कपड़ों का घोटाला किया,
करने दो, / हमें क्या !

अंधेर शासन चल रहे हैं,
चलने दो, / हमें क्या !

दलितों को रोज मारे जा रहे हैं,
मरने दो, / हमें क्या !

हरिजनों की बस्तियों में
लगाई जा रही है आग,
लगने दो, / हमें क्या !

जगह-जगह रोज बलात्कार हो रहे हैं,
होने दो, / हमें क्या !

जब तक हम सुरक्षित हैं
हमारे लिए सब ठीक-ठाक है। •

कहीं, ऐसा तो नहीं ?

कहीं, ऐसा तो नहीं
कि निर्दोष दिख कर दिल
हो गया है बेहतर ?

हम नहीं जानते
अपना इरादा
किन्तु जानते रहते हैं
आकांक्षा।

कहीं, ऐसा तो नहीं
कि दूरी रहने की
बन गई है हमारी आदत ? •

दूरी

हमारी नदी के इतने पास हूँ मैं
या आकर्षित या अपकर्षी
या फैले हुए पर या दिख कर
उनके बीच दूरी और एक कविता ।

दूरियाँ
नदी के कूलों की भाँति
आकाशी सतरंगी सुन्दर
दुनिया के निकट दिख जाता प्रतिदिन युद्ध ।

दुःख की आवाज़ सुनाई दी जाती लगातार
सत्य व दूरी पर मनाये, दीप जलाये ।

दुनिया घूमती रहे न
इस नदी से उस नदी में । •

अनुसन्धान

वैज्ञानिकों की खोज—
"आहिस्ता-आहिस्ता समुद्र
पृथ्वी को है निगल रहा।"

किन्तु भ्रष्टाचार का दुर्दान्त सागर
सम्पूर्ण पृथ्वी को खा रहा,
पर किसी को नहीं दिख रहा ! •

इश्तहार

अध्यक्ष के चेहरे पर
छूरे के अनगिनत घाव
आंखें आग की तरह लिपट
कुर्सी के पीछे
महापुरुषों के चित्र ।

सामने खड़े
हाथ जोड़े
रंगों में डीलडौल बने
नारायणानों, चरणों के सत्यापक । ०

भेड़-बकरियाँ

दो आलीशान ट्रकें
जा रही थीं
एक में
भेड़-बकरियाँ
दूसरी में लड़कियाँ।

सभी जा रही थीं वतन के लिए
झटके से अथवा हलाल होकर। ०

दृश्यादृश्य

अध्यक्ष के चेहरे पर
छुरे के अनदिखे घाव
मानो बाघ की तरह लिपटे
कुर्सी के पीछे
महापुरुषों के चित्र।

सामने खड़े
हाथ बांधे
रंगों से भीगे-भीगे मरे
मगरमच्छों, शवों के संग्रहालय। ०

अनन्त चक्र

नाना गए नानी गई
दादा गए दादी गई
मां गई पिता गए
मामा गए मामी गई ।

घर रहा शेष परिवार
बन्धु-बान्धव ।
बच्चे बड़े हुए बहुएँ आईं ।
नाती-पोते हुए ।

पर न यह थम रहा अनन्त-चक्र
जन्म और मृत्यु का
मृत्यु और जन्म का ।

राजा गए, रानी गई
विदेशी गए, स्वदेशी आए
आए स्वदेश में विदेशी
लूटने लगे,
लूट रहे हैं आज भी ।

कितनी मूर्तियाँ बनीं
कितनी टूटीं
कितने चित्र लगे
कितने हटे !

चल रहा अनन्त-चक्र ।

मेरे देश

मेरे प्यारे देश !
तुझे दुःख है
तुम आज़ादी हो।
और......
यह भारत
बहुत प्यारी संस्कृति और त्योहार है।

है किसी का हूँ तुम्हारा देश
तुम इतने कैसे महान ?
कैसे बताए ?
इस देश में भी बच्चा पावन बन रहा है।

महान रहते हैं नाना और बातें करते
धर्मप्रिय और धनवान,
यहाँ घूम-घूम कर चलते हैं
यहाँ गरमी मार खाते हैं
अगर्भी और बड़े..
यहीं भाव विकट है !

मेरे प्यारे देश
मुझे दिया है ! ●

गृह प्रवेश

चलत चलत
जूते-चप्पल घिसे
तब सिर पर
बनी यह अपनी छत।

पांव धरती पर
सपना साकार,
बना घोंसला।

चिड़े ने चिड़िया से
अपनी घर मे
प्यार किया पहली बार। ०

नव वर्ष

एक वर्ष गया
घट गया आयु का एक अंश
फिर भी हम खुश हैं।

गत वर्ष जो न हुआ पूरा,
उसे पूरा करेंगे इस वर्ष।

बदला कैलेंडर,
हटा पुराना चित्र।
नव-वधू सा
अभिवादन की मुद्रा में,
सम्मुख खड़ा नववर्ष
करते हम उसका स्वागत।

आशंका

लगता है
आकाश
और
दिशाओं ने
जन्म ले लिया है
हमारे घर में
और
अचानक
घर प्यार से सजाया गया घर
एक शक्तिशाली बम-विस्फोट से
उड़नेवाला है।

हम
अपने बच्चों को
पहचान नहीं रहे
ये बच्चे नहीं—
"टाइम-बम" हैं।

हमारे दरवाजे पर
शांति खड़ी है
और हम उसे पहचान नहीं पा रहे। ०

भोर

भोर भोर।

एक भोर
इकहरी,
सर्द,
भोर,
सुखद अनुभव।

भोर, भोर।
गहरा भोर।
अन्तहीन भोर...।

क्यों काले किए ?

क्या मैंने रात दिन
लिखकर अपने
जीवन की किताब के
सारे पन्ने ?

लिख-लिखकर गढ़-गढ़कर
उन्मादक कविताओं में
क्या मैंने उभार दीं
अपनी अपार भावनाएँ ?
क्यों मैंने धरती की बातों का
अपनी गहराई अभिव्यक्ति ?

भावों को, आवेश को
अक्षरों में भर भर
मैंने रचाईं कविताएँ
जलती हुई अग्नि की मशाल सी,
बरसती हुई शीतल वर्षा की फुहार सी।

क्या, मैंने बहाई हृदय से,
भावों की सरिता ?
क्यों मैंने नापने की चेष्टा की
लेखनी के द्वारा
जीवन की गहराई ?

कविता !
मैं तुम्हारी आग में बहुत तप चुका
अब मुझे दो रिहाई। ०

स्मृति हारे

तुम्हें याद है
मेरी हृदय-हारे !
मेरी मधुर बातें,
कोमल स्पर्श
और कसमसाते होंठ ?

तुम्हें याद है
मेरी कामिनि !
तुम्हारा मुस्कराना
मेरा फिर मनाना
तुम्हारे स्नेहमय हाथ थे ?

तुम्हें याद है
मेरी प्रियतमा !
हमारी इच्छाएँ
स्वप्न
और आकांक्षाएँ ?

तुम्हें याद है
हमारे धड़कते दिल
उष्ण आलिंगन
मधुर चुम्बन
और विषमयी वासनाएँ ? ●

खड़े-खड़े

यदि हम चाहें—
जीवन काट सकते हैं
दो पाँवों पर खड़े-खड़े,
मुग्ध नयनों से देखते,
आपस में बातें करते।

यदि हम चाहें—
देख सकते हैं
संसार का समस्त सौन्दर्य
और बन सकते हैं
विश्व में सबसे सुखी। ०

निर्जन

जब निर्जन रात में
सियार चिल्लाते हैं
गड़गड़ाकर बोलते हैं मेंढक
पेड़ डोलते, हवाएं चिंघाड़ती हैं
मैं सो नहीं पाता
और सोचता हूँ तुम्हें।

जब मेघ गरजते हैं
रह रहकर कड़कती है बिजली
तब मैं अपने पास चाहता हूँ तुम्हें।

डरता हूँ—
कहीं इस निर्जन में
मेरे प्राण न निकल जाएँ!
और मैं पुकार उठता हूँ तुम्हें। •

प्रौढ़ प्रेम

उम्र की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते
तुम प्रौढ़ हो गई तो क्या हुआ ?
मैं भी तो अब युवा नहीं रहा ।

तुम्हारी तरह मेरे भी सिर के बाल
होने लगे हैं सफ़ेद ।
मेरी कालभेदी दृष्टि
आज भी देख रही स्पष्ट—
तुम्हारी पतली कमर
और मोहिनी सूरत ।

तुम्हारे प्रति मेरा प्यार
आज भी है बरकरार
पागलपन की सीमा तक । ०

आशंका

शब्दों की तरह
नहीं है अभी निश्चित
मानचित्र और भूखण्ड
अभी नहीं रहे हैं उभरे

तब जाने
क्यों होने जा रहे हैं डरावने ? •

कुछ करो

कुछ करो ऐसा
कि, न बढ़ें दूरियाँ

कुछ करो ऐसा
कि, बने प्रेम-बन्धन

कुछ करो ऐसा
कि, न हो जगहँसाई

कुछ करो ऐसा
कि हम तनावमुक्त हो जाएँ। ०

प्रतिध्वनि

कलकत्ता महानगर के
कुछ रचनाकारो द्वारा
प्रतिध्वनि का गठन ।



नये रचनाकारो को
मच देने के लिए सकल्पशील ।



प्रतिध्वनि का यह सहयोगी प्रयास ।



प्रथम प्रस्तुति मे तीन प्रकाशन

इकेबाना :
हथेली पर खडित सूर्य :
विश्वास रच रहा है मुझे :



द्वितीय प्रस्तुति मे पाँच प्रकाशन

बिजूका :
छायागाछ :
आहट :
शब्द यात्रा :
धारदार :

प्रतिध्वनि
31, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, क